RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : KANPUR HO/002/2022-24
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

जुलाई-2023 | वर्ष - 15 | अंक : 06 | मूल्य : 5/-

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (सहा.अभि. जलकल विभाग), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश :
सुनील कुमार, ढेलवा, गाजीपुर (उ.प्र.), मो.: 9935363730, 9170836363
योगेन्द्र कुमार (ब्यूरो चीफ चित्रकूट मण्डल) मो.: 8299162841
हमीरपुर ब्यूरो प्रमुख - रघुवर प्रसाद, मो.: 9793739030
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख लखनऊ मण्डल :
राजकुमार, उन्नाव
मो.: 9889273743, 9392660070
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य : ब्यूरो प्रमुख
रमा गजभिये, मो.: 7828273934
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001, मो. : 09887512360, 0144-3201516
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-पी.पी.एन. मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020 • IFSC CODE-SBIN0001784

समाधान

इस प्रकार द्रविड़ों की समस्या को हमने संक्षेप में विवेचन किया इसका समाधान क्या है उसे हमें मिलकर खोजना चाहिए। द्रविड़ों की समस्या का मूल वही है जो आदिवासी और अछूतों की समस्या का है क्योंकि जगह जगह मैं विवेचन करता आया हूँ कि दक्षिण के द्रविड़ उत्तर के शूद्र अछूत बन पर्वत कन्दरा और दुर्गम स्थानों के आदिवासी एक ही रक्त वंश की सन्तान हैं। सभी ब्राह्मण प्रधान आर्य संस्कृति की शोषक प्रवृत्ति के शिकार हैं। वे सब एक साथ पराजित हुए थे। जो दक्षिण को चले गये वे द्रविड़
कहलाये, यहां आर्य परम्परा में जो सामिल हुए वे शूद्र और जो बन पर्वत कन्दराओं में चले गये वे आदिवासी। इस सब की समस्या एक जैसी है। किन्तु उत्तर और दक्षिण की समस्याओं में कुछ भिन्नता है। दक्षिण का द्रविड़ अछूत नहीं रहा जबकि उत्तर का शूद्र अछूत है। दक्षिण की समस्या के सुधार के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं। (1)
तमिल भाषा उत्तर वासी अनिवार्य रूप से पढ़ें ताकि उत्तर दक्षिण में सोहार्द बढ़े (2) उत्तरवासी आर्य राम लीलाएं करना और रावण के पुलते जलाना बन्द करें (3) ब्राह्मण अपनी पूजा की तमन्ना न करें (4) राम को भगवान की संज्ञा दक्षिण से हटा दें। आर्य संस्कृति के ग्रन्थों की ओवर हालिग करें और अन्धविश्वास अतिशयोक्ति और ऊंच नीच की भावना पैदा करने वाले अंश निकाल दें। उन पुस्तकों को जप्त कर लें उत्तर वासी द्रविड़ों को समान दर्जा दें। केन्द्र सरकार राज्य सरकार की स्वयत्तता सौंप दें। जब तक ये बातें नहीं हो जाती तब तक एकता नहीं हो सकती। भारत सरकार स्वायत्तता नहीं मानती तब तक संघर्ष जारी रहेगा। और उसका परिणाम विघटन होगा। जो एक प्रथक विधान, प्रथक भूखण्ड और प्रथक सरकार के रूप में असतित्व में आयेगा।
के रूप में असतित्व में आयेगा।
संज्ञा दक्षिण से हटा दें। आर्य संस्कृति के ग्रन्थों की ओवर हालिग करें और अन्धविश्वास अतिशयोक्ति और ऊंच नीच की भावना पैदा करने वाले अंश निकाल दें। उन पुस्तकों को जप्त कर लें उत्तर वासी द्रविड़ों को समान दर्जा दें। केन्द्र सरकार राज्य सरकार की स्वयत्तता सौंप दें। जब तक ये बातें नहीं हो जाती तब तक एकता नहीं हो सकती। भारत सरकार स्वायत्तता नहीं मानती तब तक संघर्ष जारी रहेगा। और उसका परिणाम विघटन होगा। जो एक प्रथक विधान, प्रथक भूखण्ड और प्रथक सरकार के रूप में असतित्व में आयेगा।

साभार : द्रविड़ और द्रविड़ स्थान
पृ.सं. 34 से 44 तक।

अछूतों का महत्व

संसार के अधिकांश देशों में ऐसे वर्ग हैं, जो निम्न वर्ग कहे जाते हैं। ये रोम में स्लेव या दास कहलाते थे। स्पार्टन में इनका नाम हेलोटस या क्रीत था। ब्रिटेन में ये विलियन्स या क्षुद्र कहलाते थे, अमरीका में नीग्रो और जर्मनी में ये यहूदी थे। हिंदुओं में यही दशा अछूतों की थी, परंतु इनमें से कोई इतना बदनसीब न था, जितना अभागा अछूत है। दास, क्रीत क्षुद्र सभी लुप्त हो गए हैं। परंतु छुआछूत का भूत आज भी मौजूद है और यह तब तक मौजूद रहेगा जब तक हिंदू धर्म का अस्तित्व है। अछूत यहूदियों से भी गया-बीता है। यहूदियों की दुर्दशा उनकी अपनी करनी के कारण है। अछूतों दुर्गति के कारण नितांत भिन्न है। यह निर्मम हिंदुओं की साजिश के शिकार हैं, जो उनकी दुर्दशा के लिए बर्बर तत्वों से कम नहीं हैं। यहूदी तिरस्कृत है, परंतु उनकी तरक्की के रास्ते बंद नहीं कर दिए गए हैं। अछूत केवल तिरस्कृत ही नहीं हैं, बल्कि उनकी तरक्की के सभी दरवाजे बंद हैं। फिर भी अछूतों की तरफ किसी का ध्यान नहीं गया 6 करोड़ प्राणियों की अनदेखी हो रही है।

भारत में आजादी का जो कोलाहल मचा है, उसमें यदि कोई हेतु है तो वह है अछूतों का हेतु। हिंदुओं और मुसलमानों की लालसा स्वाधीनता की आकांक्षा नहीं है। यह तो सत्ता संघर्ष है, जिसे स्वतंत्रता बताया जा रहा है। इसी कारण मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि किसी दल अथवा किसी संगठन ने अपने आप को अछूतों के प्रति समर्पित नहीं किया। अमरीका साप्ताहिक ''द नेशन'' और इंगलैंड के साप्ताहिक ''स्टेट्समैन'' प्रभावशाली अखबार है। दोनों ही भारतीय स्वतंत्रता के पक्षधर हैं और ये भारत की स्वतंत्रता का दम भरते हैं। जहां तक मैं जानता हूं, किसी ने भी अछूतों की समस्याओं को नहीं उठाया है। दरअसल उनकी स्थिति को कोई स्वतंत्रता प्रेमी प्रकट नहीं सकता। उन्होंने मात्र हिंदू संस्था को ही मान्यता दी है, जो स्वयं को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कहती है। अन्य हिंदू और कोई अन्य यह नहीं जानता कि वास्तव में अछूत क्या है। भारत में हिंदुओं के सिवाय सब जानते हैं कि नाम कुछ भी क्यों न रख लिया गया हो, यह संदेहातीत है कि यह मध्यवर्गीय हिंदुओं की संस्था है, जिसको हिंदु पूंजीपतियों का समर्थन प्राप्त है, जिसका लक्ष्य भारतीयों की स्वतंत्रता नहीं, बल्कि ब्रिटेन के नियंत्रण से मुक्त होना और वह सत्ता प्राप्त कर लेना है, जो इस समय अंग्रेजों की मुट्ठी में है। कांग्रेस जैसी आजादी चाहती है, यदि उसे वह मिल जाती है, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि अछूतों का ठीक वही हाल होगा जो अतीत में होता रहा है। अछूतों के प्रति इस अवहेलना के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की भारतीय शाखा बधाई की पात्र है जिसने प्रशांत संबंध संस्थान में मेरा प्रबंध लेख आमंत्रित किया कि मैं इस विषय पर प्रकाश डाल सकूं कि भारत के नए संविधान में अछूतों की स्थिति क्या होगी। मैं स्वीकार करता हूं कि भारत के नए संविधान में अछूतों की स्थिति पर मेरे वक्तव्य का निमंत्रण एक सुखद आश्चर्य है। मुझे इस बात से बहुत प्रसन्नता हुई है कि बहुत से काम हाथ में होने के पश्चात भी मैं यह प्रबंध लिखने के लिए सहमति दे सका हूं।

साभार - बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड-17, पृष्ठ सं. 3 से 4 डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

इक्कीसवीं पहेली मन्वंतर का सिद्धांत

ब्राह्मणों का एक सिद्धान्त था कि उनके देश का शासन स्वर्ग से चलता है। मन्वंतर का यही अर्थ प्रतीत होता है।

मन्वंतर का आशय देश की राजनीतिक सत्ता से है। इसके पीछे यह विश्वास है कि निश्चित अवधि के लिए सत्ता एक निगम को सौंप दी जाती है। इस समूह में एक मनु होता है, सप्तऋषि और एक इन्द्र होता है जो स्वर्ग में अपने आसनों से प्रजा से पूछे बिना अथवा इच्छा जाने बिना शासन–सूत्र चलाता है। एक समूह के शासन–काल को, जिसमें मनु की सत्ता सर्वोपरि है, मन्वंतर कहते है। एक मनु का शासनकाल समाप्त हो जाता है तो दूसरा आ जाता है। यह क्रम चलता रहता है। युगों की भांति मन्वंतर का भी समय–चक्र है। चौदह मन्वंतरों का एक चक्र होता है। विष्णु पुराण में मन्वंतरों का आभास मिलता है जो इस प्रकार हैः

''तब ब्रह्मा ने सृष्टि–पालन हेतु स्वंय को मनु स्वायंभुव बना लिया। जो स्वयंमेव मौलिक रूप में एक रूप जन्मे और अपने नारीभाग से उन्होंने शतरूपा को रचा जिसे सृजित प्राणियों की रक्षा हेतु तपस्या द्वारा वर्जित वैवाहिकता के पास से शुद्ध किया जिसे मनु स्वायंभुव ने अपनी पत्नी बनाया।''

एक क्षण को हम यहां ठहरकर विचार करते हैं, इसके क्या अर्थ हैं? क्या इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मा उभयलिंगी थे? क्या इसका अर्थ यह है स्वायंभुव मनु ने अपनी बहन शतरूपा को पत्नी बना लिया? विष्णु पुराण के अनुसार यदि यह सही है तो कितना विचित्र है? विष्णु पुराण का आगे कथन हैः

''इस युगल से दो पुत्र जन्मे, प्रियव्रत और उत्तानपाद और दो पुत्रियां जन्मीं, प्रसूति और आकूति जो अत्यन्त लावण्यमयी और गुणवान थीं। प्रसूति का विवाह दक्ष से और आकूति का रूचि प्रजापति से। आकूति से जुड़वा बच्चे उत्पन्न हुए यज्ञ और दक्षिणा जिन्होंने परस्पर विवाह कर लिया (भाई–बहन के विवाह का एक और उदाहरण)। उनके बारह पुत्र उत्पन्न हुए। वे देवता स्वायंभुव मन्वंतर में यम कहलाए।''

''प्रथम मनु स्वायंभुव था फिर स्वारोचिष। उसके उपरांत क्रमशः औतमी, तामस, रैवत, चाक्षुष, जो तिरोहित हो गए। सातवें वर्तमान मन्वंतर के मनु, सूर्य–पुत्र वैवस्वत है।''

विष्णु पुराण कहता है अब मैं स्वारोचिष मनु के पुत्रों, देवताओं और ऋषियों के विषय में बताता हूं। इस काल (द्वितीय मन्वतंर) के देवता थे पारावत और तुषित। उनका इन्द्र था ''विपश्चित'' उनके सप्तर्षि थे। ऊर्ज, स्तंभ, प्राण, दत्तोली, ऋषभ, निश्चर, और अर्वरीवट। चैत्र और किंपुरूष तथा अन्य मनु के पुत्र थे।

''तीसरे मन्वंतर के मनु थे औतमी। उसके समय के इन्द्र थे सुशांति। देवताओं के नाम हैं : स्वधामा, सत्य, शिव, प्रतर्दन और वसुवृती और प्रत्येक पांच वर्ग के बारह देवता थे। उस समय के सप्तर्षि वशिष्ठ के सात पुत्र, सात ऋषिगण थे और अज, परसु, दिव्य तथा अन्य मनु के पुत्र थे।

चौथे मनु तामस के काल में पूजनीय देवता थे सुरूप, हरि, सत्य और सुधि। प्रत्येक वर्ग में सत्ताईस देवता थे। शिवी उस काल का इन्द्र था। सौ यज्ञ संपन्न करने के कारण उसे शतक्रतु भी कहा जाता है। सप्तऋषि थे ज्योतिर्धाम, पृथु, कव्य, चैत्र, अग्नि, वानक और पिवर। तामस के बलशाली पुत्र थे। राजा नर, ख्याति, सांथ्य, जनुजंघा आदि।

पांचवें मन्वंतर के मनु रैवत थे। उनका इन्द्र विभु था। देवतागण, जिनमें प्रत्येक के चौदह देवता होते थे, इस प्रकार थे–अमितभास, अभूतरास, वैकुंठगण, सुमेधगण। तत्कालीन सप्तऋषि थेः हिरण्यरोम, वेदश्री, उर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुद्युम्न, पर्जन्य और महामुनि। रैवत के पुत्र इस प्रकार थे– बाल बंधु, सुसंभाव्य, सत्यक तथा अन्य वीर राजा।

ये चार मनु–स्वारोचिष, औतमी, तामस और रैवत प्रियव्रत की संतान थे जिसने विष्णु को अपनी उपासना से प्रसन्न करके अपनी संतति के लिए मन्वंतरों का मनु बनाए जाने का वर प्राप्त कर लिया था।

छठे मन्वंतर का मनु चाक्षुष था। उसका इन्द्र मनोज्व था। उस काल के पांच वर्ग के देवता थे आद्य, प्रस्तुत, भव्य, पृथुग और उदारता की प्रतिमूर्ति लेखगण। उस काल के सप्तर्षि थे– सुमेध, विराज, हाविष्मत, उत्तम, मधु, अभिनमान और सहिष्णु। पृथ्वी के स्वामी चाक्षुष के शक्तिशाली पुत्र थे उरू, पुरु, शतद्युम्न आदि।

वर्तमान सातवें मन्वंतर के मनु अन्त्येष्टि देव, सूर्य की अनुपम संतान वैवस्वत हैं और उनके देवता हैं आदित्य, वसु और रूद्र। उनका इन्द्र पुरन्दर सप्तर्षि है।

वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भारद्वाज। वैवस्वत मनु के नौ धर्मनिष्ठ पुत्र हैं राजा इक्ष्वाकु, नाभानिदिष्ट, करूष, पृषध और वसुमत।''

अभी सात मन्तंवरों का विवरण दिया गया है जो विष्णु पुराण में उल्लिखित है। ये विष्णु पुराण लिखे जाने तक की स्थिति थी। क्या मन्वंतर शासन बाह्य था? इस विषय में ब्राह्मण मौन है। परन्तु विष्णु पुराण के लेखक को पता है कि सात मन्वंतर अभी और आने हैं। इनका विवरण इस प्रकार है :

''विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य की पत्नी थी, उसकी तनी संतानें हुई–मनु (वैवस्तव) यम और यमी (अथवा यमुना) अपने पति का तेज झेलने में असमर्थ संज्ञा ने उसे छाया दे दी, और स्वयं उपासना के लिए वनों में चली गई। सूर्य ने छाया को अपनी पत्नी संज्ञा जानकर उससे तीन संतान और उत्पन्न कीं। शनिश्चर (शनि), मनु (सावर्णी) और पुत्री ताप्ती (ताप्ती नदी)। छाया को एक बार यम पर क्रोध आ गया। उसने उसे शाप दिया साथ ही उसने यम को और सूर्य को यह भी बता दिया की वह वास्तविक संज्ञा नहीं है। छाया के यह बताने पर कि उसकी पत्नी जंगलों में चली गई है सूर्य ने अपनी दिव्यदृष्टि से देखा कि वह घोड़ी रूप में तपस्यारत है (अश्वी), सूर्य ने घोड़े के रूप में पुनर्जन्म ले लिया था और अश्वरूपिणी अपनी पत्नी के पास पहुंच गया। और उससे तीन अन्य संताने उत्पन्न कीं। दो आश्विन और रैवत थी। फिर संज्ञा को घर ले आया। विश्वकर्मा ने सूर्य (नक्षत्र) की गहनता कम करने और उसकी दीप्ति घटाने के उद्देश्य से अपनी चक्री पर चढ़ाया और उसे घिस कर आठवां भाग कर दिया क्योंकि इससे अधिक अविभाज्य था। जो दैवी वैष्णव भव्यता सूर्य में थी, वह विश्वकर्मा के घिसने से धरती पर गिरी। शिल्पकार (विश्वकर्मा) ने विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशुल, कुबेर का शस्त्र और कार्त्तिकेय का वेलु बनाया और अन्य देवों के शस्त्रों का निर्माण किया। विश्वकर्मा ने इन सबका निर्माण सूर्य की तेजोपम किरणों से किया।

''छाया का पुत्र, जो मनु कहलाता था, उसी वर्ण का होने के कारण उसका दूसरा नाम सावर्णी पड़ा। जैसा कि उसके बड़े भाई मनु वैवस्वत का था। वह आठवें मन्वंतर का मनु है। अब मैं उसका विवरण निम्न बातों के साथ देता हूं। जिस काल में सावर्णी मनु बनेंगे, उनके देवगण होंगे सुतप, अभिताभास और मुख्य तथा प्रत्येक के 21 देवगण होंगे तथा सप्तऋषि इस प्रकार होंगे, दीप्तिमत, गालव, राम, कृप और द्रोणि। मेरा पुत्र व्यास छठा और ऋष्यऋंग सातवां ऋषि होगा। इस युग का इन्द्र बलि होगा। विरोचन का निष्पाप पुत्र विष्णु की कृपा से पाताल का राजा बनेगा। सावर्णी की संतानें होंगी–विराज, अरवरिवास, निर्मोह आदि।

''नौवे मनु दक्ष सावर्णी होंगे। उस समय के तीन प्रकार के देव होंगे–पारस, मारीचिगर्भ, और सुधर्मा। प्रत्येक वर्ग में बारह देव होंगे और उनका प्रमुख इन्द्र होगा। अद्‌भुत सवन, द्युतिमत, भव्य, वसु, मेधातिथी, ज्योतिषमान और सत्य, ये सप्तऋषि होंगे, धृतिकेतु, दृप्तिकेतु, पंचहस्त, निर्मय, पृथुसर्व आदि मनु के पुत्र होंगे।

दसवें मन्वंतर में मनु ब्रह्म सावर्णी होंगे; उनके देवगण होंगे सुधामा, विरूद, शंतसांख्य उनका इन्द्र बलशाली शांति होगा, सप्तऋषि होंगे–हविष्मान, सुकृति; सत्य, अप्पममूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौज और सत्यकेतु। मनु के दस पुत्र होंगे– सुक्षेत्र, उत्तमौज, हरिषेण आदि।''

''ग्यारहवें मन्वंतर का मनु धर्मसावर्णी होगे। उसके समय देव होंगे विहंगम, कामागम और निर्माणरति और प्रत्येक की संख्या तीस होगी। इस मन्वंतर का इन्द्र वृष होगा। सप्तर्षि होंगे निश्चर, अग्नितेज, वपुस्मान, विष्णु आरुणी, हविष्मान और अनघ। पृथ्वीपालक मनु के पुत्र होंगे सावर्ग, सर्वधर्म, देवानिक और अन्य''

बारहवें मन्वंतर में रूद्र–सावर्णी का पुत्र मनु होगा, उस काल का इन्द्र होगा ऋतुधामा, देवों के नाम होंगे हरित, लोहित, सुमानस और सुकर्मा। प्रत्येक की संख्या पन्द्रह होगी। सप्तर्षि इस प्रकार होंगे, तपस्वी सुतप, तपोमूर्ति, तपोर्ति, तपोधृति, तपोद्युति और तपोधन, और मनु के मेधावी और बलशाली पुत्र होंगे–देव, उपदेव तथा देवश्रेष्ठ आदि।''

तेरहवें मन्वंतर का मनु रौच्य होगा– सुधामन, सुधर्मन और सुकर्मण, उनका इन्द्र दिवसपति होगा। सप्तर्षि होंगे निर्मोह, तत्वदर्शन, निष्प्रकंप, निरूत्सुक धृतिमत, अव्यय और सुतापस तथा त्रिसेन, विचित्र तथा अन्य नृप होंगे।''

चौदहवें मन्तवर का मनु भौत्य होगा। शुचि उसका इन्द्र होगा। देवताओं के पांच वर्ग होंगे चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ भ्रजीराज और वैवृद्ध। सप्तर्षि इस प्रकार होंगे। अग्निबाहु, शुचि, शिक्रमागध, ग्रिधृ, युक्त और अजित। मनु के पुत्रों के नाम होंगे उरु, गंभीर, गभीरा, बृधन आदि राजा होंगे और इस धरा के शासक होंगे।''

इस प्रकार की है मन्वंतरों की कहानी। आजकल हम सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की बातें सुनते हैं। ब्राह्मणों का सिद्धान्त इसके ठीक विपरीत है। उनका सिद्धान्त है सर्वहारा पर स्वर्ग में बैठे पिताओं का अधिनायकवाद।

इस प्रकार एक प्रमुख प्रश्न उठता है। एक के पश्चात् एक मनुओं ने किस प्रकार प्रजा पर शासन किया? ''प्रजा के लिए उन्होंने कौन से विधान बनाए?'' इसका उत्तर केवल मनुस्मृति से ही प्राप्त होता है।

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय से यह उत्तर मिलता हैः

1. ऋषिगण मनु के पास गए जो एकाग्रचित्त बैठे थे, उनकी समुचित उपासना करके उन्होंने ऐसा कहाः
2. देव हमें साररूप में उचित क्रम में चारों (मुख्य) वर्णों और मध्यवर्तियों के लिए पवित्र विधान बताएं।
3. क्योंकि, हे देव! केवल आपको ज्ञात है कि स्वायंभुव (मनु) ने क्या अनुष्ठान और आत्मा के ज्ञान का उपदेश किया है जो ज्ञान और अनुभव के परे है।

मनु उन्हें उत्तर देते हैं :

5. यह ब्रह्मांड अंधकारमय अदृश्य था। इसका कोई आकार नहीं था। पहचान नहीं थी। न इसे समझा जा सकता था, न इसे जाना जा सकता था क्योंकि यह गहरी निद्रा में सुप्त था।
8. स्वायंभुव मनु ने सोचा मैं एक से अनेक होऊं। उन्होंने सर्वप्रथम जल की रचना की और उसमें बीज डाल दिया।
9. वह (बीज) एक स्वर्णिम अण्डज बन गया। दीप्ति में सूर्य के समान इसी अण्डे से वह स्वयं ब्रह्मा जन्मे, समस्त सृष्टि के रचयिता।
34. तब मैंने सृष्टि रचना के लिए कठोर तप किया। इसके पश्चात दस महान ऋषियों को बनाया जो सृष्टि के स्वामी थे।
35. मारीचि, अत्रि, आंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस, वशिष्ठ भृगु और नारद को रचा।
58. परन्तु उसने पवित्र विधान का सम्पादन कर उन्हें दीक्षित किया। स्वयं उन्हें सिखाया, शास्त्रानुसार आरंभ में मात्र मुझे ही, फिर मैंने वे (विधान) मारीचि और अन्य ऋषियों को बताए।
59. भृगु ये विधान तुम्हें बताएंगे क्योंकि उस ऋषि ने सम्पूर्ण रूप से पूर्णता से मुझसे सीखा है।''

इससे यह प्रकट होता है कि केवल मनु ने विधान

साभार : बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
संपूर्ण वाङ्मय खण्ड–8
पेज संख्या 279 से 283 तक डॉ.बी.आर.अम्बेडकर

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

ज्वलंत समस्याएँ

चमार शासक कौम है, तर्कशील है, परिश्रमी है, उद्यमी है और जुझारू है, लेकिन वर्णाश्रम व्यवस्था में सबसे नीचे के पायदान पर होने के कारण वह सदियों से दमन का शिकार है, इसलिए बौद्धिक और शारीरिक बल में कमी आ गई है। हालांकि दुनिया में होने वाले परिवर्तनों से वह भी अप्रभावित नहीं है और अंधकार में प्रकाश की ओर उन्मुख है।

सन् 1989 में सोवियत संघ के विघटन के बाद समाजवाद का किला ध्वस्त हो गया और पूंजीवाद की पताका सारे विश्व में फहरा रही है। उसका अगुवा बनकर अमेरिका एकमात्र दरोगा बना हुआ है। वह और उसके घनिष्ट सहयोगी के रूप में यूरोपिन यूनियन में शामिल विकसित राष्ट्र अपना आर्थिक साम्राज्य विकासशील राष्ट्रों पर थोपने के निरन्तर प्रयत्नशील है। वे अपनी किसी न किसी विवशता के कारण पूंजीवादी देशों द्वारा निर्धारित आर्थिक नीतियाँ अपने यहाँ भी अपनाने के लिए विवश हैं। विकसित राष्ट्रों का शीर्ष नेतृत्व अपने देश के हितों को तो जरा भी ठेस नहीं पहुँचने देते, लेकिन दूसरों की उसे कोई परवाह नहीं और विकासशील देशों को अपने जाल में फांसने में कोई कसर नहीं छोड़ते। भारत भी अब पूंजीवादी नीति की ओर अग्रसर हो रहा है, जिससे आर्थिक असमानता बढ़ती जा रही है।

वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के चलते सार्वजनिक उद्योगों एवं शिक्षा के निजीकरण की नीति को बढ़ावा देने से अनुसूचित जाति/जनजाति वर्गों के विकास का पहिया रूक गया है, जो थोड़ी–सी बराबरी और खुशहाली का अहसास उसे होने लगा था, वह फिर डगमगा गया है। इन वर्गों में सबसे बड़ी जनसंख्या वाली कौम चमार अपने आप को फिर पहले की तरह समस्याओं से घिरा पा रही है। जिन लोगों ने गरीबी झेलते हुए बड़ी मुश्किल से अपने बच्चों को पढ़ाया–लिखाया, उनके लिए शिक्षा बेमानी हो गई है। इस समय ज्वलंत समस्याएं निम्नलिखित है–

उत्पीड़न –

वैसे तो सामन्ती मानसिकता और जातीय दंभ से ओत–प्रोत दंबग उच्च जातियों के ऊँची नाक वाले लोग अपने यहाँ काम करने वाले मजदूरों तथा नीच समझी जाने वाली जाती के लोगों पर समय–समय पर अत्याचार करते ही रहते हैं, लेकिन जिन्होंने इसे नियति मान लिया है, वे विरोध नहीं करते, इसकी चर्चा गली–मुहल्लों तक ही सीमित रहकर अपने आप कुछ समय बाद समाप्त हो जाती है। लेकिन चमार जो विरोध करते हैं, गलत बात का जवाब देते हैं और जहाँ तक संभव होता है, मरने मारने पर उतारू भी हो जाते हैं, उसके इस मनोबल को तोड़ने के लिए उत्पीड़न की घटनाएँ दूसरों के मुकाबले ज्यादा होती हैं और पुलिस–प्रशासन भी उनका साथ नहीं दे पाता, क्योंकि उनकी हमदर्दी भी वर्गीय सम्बन्धों के कारण उत्पीड़कों के साथ ही होती है। अपने ही जैसे हाड़–मांस के आदमी को जिन्दा जलाना कितना वीभत्स है, कितना क्रूर है, दूसरों की बहन–बेटी की इज्जत से खेलना कितना शर्मनाक है। मजदूर को उसकी मजदूरी के बदले मारना–पीटना कहां का न्याय है? लेकिन उत्पीड़न का यह सिलसिला रूकने का नाम नहीं ले रहा है। उस पर विराम कौन लाएगा, कैसे लगेगा?

मुसलमान का गांव में एक घर भी होता है, उसे कोई छेड़ने की हिम्मत नही करता, क्योंकि उसकी हमदर्दी के सारे क्षेत्र में ही नहीं, पूरे देश के मुसलमान भाई खड़े नजर आते हैं। दूसरी तरफ चमार के 100 घर भी होंगे, उनका उत्पीड़न करने में किसी प्रकार का डर नहीं लगता है। उन्हें पता है कि पीड़ित के खानदान के भी सारे लोग उसके साथ खड़े नहीं होंगे। इस स्थिति में सुधार करना होगा, और दूसरों से भी सीखना होगा अन्यथा यह समस्या यथावत बनी रहेगी, आँसू तथा कराहट घर की चारदीवारी की हद पार नहीं कर पाएगी।

डरने की जरूरत नहीं है, कल कि रोजी–रोटी के लिए उन्हीं लोगों के पास जाना है, बुरा बनने का डर है, तो बोलने–चिल्लाने की भी सबको जरूरत नहीं है, बस केवल बिरादरीके दस–पांच गांवों के हजार–पांस सौर लोगों को उसके घर पर हमदर्दी के लिए इकट्ठा होने से ही बात बन सकती है। यदि वहाँ भी दबाव न बने, तो थाना–कचहरी में एक बार थोड़े से बदले तेवरों के साथ इकट्ठा जुटने का साहस करोगे, तो तुम्हारी बात प्रभावी ढंग से कहने वाला कोई न कोई नेता तो अपने आप मिल जाएगा। इतना जरूर ध्यान रखना है कि वह नेता आपके हितों के विपरीत सौदेबाजी न कर पाए। भीड़ के हुजूम को थाना–कचहरी कोई भी नजरअंजाद नहीं कर पाएगा।

घोर गरीबी

आंकड़े चाहे भारत को कितना भी आर्थिक रूप से मजबूत दिखाएँ, विकास दर भले ही 10 प्रतिशत से भी ऊपर चली जाए, लेकिन 40 प्रतिशत से अधिक आबादी का मूलभूत सुविधाओं से वंचित होना अपने आप में बहुत ही दुःखद पहलू है। अमीरों की संख्या बढ़ेगी तो गरीबों की संख्या भी बढ़ेगी, उस पर रोक लगाने वाली छड़ी किसी के पास नहीं है।

इस गरीबी से कोई वर्ग और जाति अछूते नहीं है। लेकिन चमार की स्थिति इसलिए बहुत खराब है कि वह सामाजिक और आर्थिक पाबंदियों से अभी भी ग्रस्त हैं। वह अपने परम्परागत व्यवसाय को तिलांजलि देकर दूसरे काम की ओर अग्रसर हुआ, तो दूसरों ने कहीं भी जमने नहीं दिया, कृषि कार्य में भी अब उसकी जरूरत नहीं। कोई काम करने का उसे न तो कोई अनुभव है और न ही उसके पास कोई पूंजी है। कोई दूसरा उसे सहारा एवं सहयोग नहीं देना चाहता।

काम–धंधों के बारे में सरकार की जितनी भी योजनाएं है, उनकी उसे जानकारी नहीं है। यदि इस भयंकर गरीबी से निकलने की समय रहते पहल नहीं की गई, तो भूख और बीमारी से दम तोड़ने वालों की संख्या बढ़ती ही जाएगी। इसलिए गांव के शिक्षित बेरोजगार लोगों को ग्राम स्तर पर स्वयं सहायता समूह बनाकर सहाकारिता के आधार पर कुटीर की शुरूआत करनी होगी। कोशिश करेंगे तो आगे का नेटवर्क भी सुलभ हो जाएगा।

बेरोजगारी–

कहने को तो सारी दुनिया में मंदी छाई है, भारत भी इससे अछूता नहीं है, यहां भी बेरोजगारी की संख्या बढ़ती जा रही है। सरकारी प्रयासों के बावजूद इस पर नियंत्रण पाना कठिन हो रहा है। बहुत बाद में यहाँ पर व्यवसायिक प्रशिक्षण की और रूझान बढ़ा है। फिर इस दिशा में जो योजनाएं चल रही हैं, वे देश की आबादी के हिसाब से ना काफी है। चमार बिरादरी के लोग इसमें भी पीछे हैं। ये नौकरी या मजदूरी के अलावा किसी भी काम को करने में शर्म महसूस करते हैं। गांव में जो काम संभव नहीं, उसके लिए शहर या बड़े कस्बे में कोशिश करनी चाहिए। सरकारी नौकरी या आर्थिक रूप से सम्पन्न लोग मिल–जुलकर व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र शुरू करें, तो रोजगार बढ़ने की गुंजाइश हो सकती है।

समर्पित नेतृत्व –

दूसरों के मुकाबले चमार बिरादरी के नेताओं के बारे में यह बात ज्यादा सुनने को मिलती है कि पार्षद, विधायक अथवा सांसद बनने के बाद वह अपने लोगों से मिलना–जुलना एकदम कम कर देता है, अन्य वर्गों के लोगों के साथ उसका बेहतर तालमेल होता है और उसके अधिकार क्षेत्र में जो कार्य अथवा योजनाएँ होती हैं, उनका लाभ भी गैर बिरादरी के लोगों को पहले और अधिक मात्रा में उपलब्ध कराता है, भले ही संख्या की दृष्टि से वे कम हों।

इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि वह जिस क्षेत्र का प्रतिनिधि है, सबकी तरफ ध्यान देना उसका दायित्व है, लेकिन बिरादरी के बहुसंख्यक लोगों को दरकिनार करना भी अच्छी बात नहीं। कई नेताओं की शिकायत यह रहती है कि अपने लोग उन्हें उचित सम्मान नहीं देते। यदि कहीं ऐसी बात है तो उसे भी सुधारना चाहिए।

वैसे तो आज के समय में राजनीति एक व्यवासाय बन गया है और छोटे–मोटे चुनाव में ही लाखों रूपये खर्च हो जाते हैं। इस प्रकार समाज के प्रति लगाव रखने वाले लोग इस क्षेत्र से ही बाहर हो जाते हैं, क्योंकि उनके पास इतना पैसा नहीं होता कि चुनाव आधुनिक तरीके से लड़ सके। फिर जो इस क्षेत्र में आता है तो वह कमाने के लिए ही आता है, इसलिए वह पहने अपना पेट भरने की सोचता है और अगले चुनाव के लिए भी बन्दोबस्त करना चाहता है, लेकिन जिन बाबा साहब ने जन–प्रतिनिधि में आरक्षण की व्यवस्था को विधि–सम्मत बनाया है, उनकी *Pay Back to society* वाली नसीहत को भी ध्यान रखना चाहिए और समाज को गरीबों की बेहतरी के लिए प्राथमिकता के आधार पर काम करना चाहिए तथा बीच–बीच में मिलने–जुलने की प्रक्रिया से भी अपने लोगों का हौंसला बढ़ता है।

आस्थागत विचलन–

अभी भी यह सच्चाई है कि चमार कौम के अधिकतर लोग हिन्दूधर्म से ही जुड़े हैं और हिन्दुओं के सभी परम्परागत त्योहारों को बड़े उत्साह से मनाते हैं। जहाँ तक दैनिक पूजा–अर्चना की बात है, हमें नहीं लगता कि सभी लोग विधिवत तरीके से करते हैं। भारत में ब्रिटिश राज्य के दौरान बहुत से लोगों ने ईसाई धर्म को ग्रहण किया, और उससे कहीं–कहीं उन्हें बाहर विदेशों में नौकरी करने के अवसर मिले, लेकिन वे यहाँ से कट गए। इसके अलावा छिटपुट रूप से मुसलमान तथा सिक्ख भी बने और बौद्ध भी बने। लेकिन उनके प्रति घृणा में कोई कमी नहीं आई, दूसरे लोग उन्हें चमार ही समझते रहे और उनकी सामाजिक हैसियत में कोई इजाफा नहीं हुआ। वैसे तो धर्म व्यक्ति का निजी मामला है, डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म अपनाने की जो मुहिम चलाई, उनकी अपेक्षा के अनुसार भारत के बौद्धों की संख्या नहीं बढ़ी।

इसका दूसरा पहलू यह भी है कि बौद्ध धर्म अपनाने वाले बहुत से भाई अपने हिन्दुवादी विचारों से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाए। इस संबंध में हम किसी को राय देना अनाधिकार चेष्टा समझते हैं, लेकिन हिन्दू धर्म की जो रूढ़ियाँ, संस्कार, कर्मकांड एवं अंधविश्वास हमारी प्रगति की राह में रोड़ा है, उन्हें तो जरूर ही तिलांजलि दे देनी चाहिए और गुरू रविदास जी एवं कबीरदास जी के उपदेशों से भी शिक्षा लेनी चाहिए। समाज के सत्संग में नाम की महिमा का अतिशयोक्ति पूर्ण गुणगान, सत्संग में बैठने से ही हजार वर्ष की तपस्या का फल मिलना और भगवान पर हद दर्जे की निर्भरता हमें निष्कर्मण्य बनाती है तथा श्रम का महत्ता पर पर्दा डालती है। बुद्धि और तर्क को महत्वहीन बनाती है। इस प्रकार के विचारों से उबरने से ही प्रगति का रास्ता खुलता है।

भगवान उनकी सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते है, पूर्ण निर्भरता से तो यह विचार भी बेहतर है। शिक्षित होने के बाद भी यह सोच कि ऊपर वाला जाने कुछ हजम नहीं होती। अपनी बुद्धि का इस्तेमाल किए बिना किसी बात को ज्यों–का–त्यों स्वीकार कर लेना तर्कशील चमार को शोभा नहीं देता। विचार ही नहीं आचरण में भी हमारे यहाँ स्थायित्व नहीं

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

है। चूंकि हम किसी धर्म से गहराई तक नहीं जुड़े हैं, आचरण भी मर्जी के मुताबिक है, तो नियमबद्धता के बिना जीवन सुचारू रूप से नहीं चल पाता। सुव्यवस्थित दिनचर्या स्वस्थ ही नहीं बनाती, बल्कि कार्य क्षमता भी बढ़ाती है।

पारिवारिक विघटन–

पाश्चात्य प्रभाव से पूरा भारतीय समाज ही त्रस्त है और संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। माता–पिता के प्रति लापरवाही आम बात हो गई है। अधिक स्वच्छंता ने पति–पत्नी के रिश्तों में भी दरार पैदा कर दी है। बड़ों की अनुभव युक्त सलाह को महत्व देने की बात तो अलग है, उसे सुनना ही गंवारा नहीं समझा जाता है। जब हम तुलना कर देखते हैं, तो पता लगता है कि दूसरों की बजाय हमारी बिरादरी के परिवारों में उच्श्रृंखला की भयावह स्थिति है। वहाँ फिर भी रिश्तों का और उम्र का लिहाज किया जाता है, शिक्षा की भी कद्र की जाती है और यदि इन सबके अलावा भी किसी प्रकार की कुशलता है, तो उसे भी सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, उत्साहवर्धन भी किया जाता है तथा जरूरत पड़ने पर प्रेरणा एवं सहयोग भी प्रदान किया जाता है।

परिवार समाज की प्रारंभिक कड़ी है, जब यह मजबूत होती है, पाारिवारिक अनुशासन होता है, तो समाज भी एकजुट होता है और यह एकजुटता ही प्रगति का आधार है। जो बड़े–बड़े सम्मेलन, प्रदर्शन या रैलियां जातिगत बैनर तले देखी जाती हैं, उनका राज पारिवारिक अनुशासन ही है और इसका चमार कौम में नितान्त अभाव है। यदि अपने अस्तित्व की रखा करनी है, तो इस पर भी सोच–विचार की जरूरत है।

सहकारिता का अभाव–

जब मनु ने संपूर्ण शूद्र वर्ग के लिए पठन–पाठन की मनाही कर दी, तब मस्तिष्क तो स्वतः ही शिथिल हो गया, केवल सेवा के अधिकार से शरीर जरूर मजबूत रहा, क्योंकि कभी–भी कहीं–भी जाने और कोई भी कार्य करने का आदेश पालन करना जरूरी था। लेकिन आज तो दुनिया बहुत आगे निकल गई है। बड़े–से–बड़े उद्यम सहकारिता के आधार पर खड़े हैं। दूसरी बिरादरी के लोग मिलजुल कर रोजगार के नए–नए विकल्प अपनाकर आर्थिक प्रगति की ओर अगसर हैं, लेकिन चमार भाई इससे भी बहुत पीछे हैं, एक–दूसरे पर जरा भी विश्वास नहीं करते। जो आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं हो, ऐसी कौम के लिए तो सहकारिता के आधार पर उद्यमिता की ओर प्रयास करना सबसे अच्छा विकल्प है। अगर हमारी बात आप तक पहुँचती है, तो इस पर भी जरूर गौर करें।

संवेदनहीनता–

कई बार अपने लोगों की स्थिति पर विचार करते समय लगता है कि चमार बिरादरी के लोग तो अभी अपने प्रति भी संवेदनशील नहीं है। कोई अड़चन होती है, शरीर में दिक्कत होती है, तो उस पर फोरी तौर पर ध्यान देते हैं, थोड़ी राहत मिलते ही भूल जाते हैं। समाज के प्रति संवेदनशीलता का पाठ हम कब पढ़ेंगे, जबकि दूसरी बिरादरी के लोग अपने समाज के प्रति जागरूक हैं और तुरंत हरकत में आ जाते हैं। यदि उनके समाज के साथ उत्तर प्रदेश में कोई घटना होती है, तो हरियाणा और दिल्ली के लोग भी हरकत में आ जाते हैं और सहयोग के लिए तत्पर हो जाते हैं। हमें इस मामले में अन्यों से सीखने की जरूरत है।

अवनति के मुख्य कारण

समाज के दूसरे समुदायों की अपेक्षा संख्या बल, बुद्धि बल और कर्मठता के बावजूद चमार समाज आशा के अनुरूप प्रगति की ओर आरूढ़ नहीं हो पाया। नौकरियों में आरक्षण के प्रावधान के अन्तर्गत कुछ लोगों को सरकारी नौकरी के अवसर भी मिले, हालांकि इस सुविधा का लाभ पाने वाले एक प्रतिशत से भी कम हैं और उन्हीं के जीवन में थोड़ी–सी बेहतरी और खुशहाली आ पाई है, जिसे देखकर दूसरे लोग ईर्ष्यावश कहने भी लगे कि इन्हे आरक्षण की जरूरत नहीं है। परन्तु गाँव–देहात और कस्बों में स्थिति जस–की–तस है और कहीं–कहीं तो पहले से भी अधिक बदतर हो गई है। इनकी अवनति के प्रमुख कारण निम्नलिखित है :

बेगार व शोषण –

अभी भी चमारों से बेगार लिए जाने और उनके शोषण की स्थितियां बरकरार हैं, यह सबसे मुख्य कारण है, जिसके कारण ये राष्ट्र की मुख्य धारा में नहीं आ पाए और मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। इसे लगभग सभी परिचित हैं कि चमारों को बेगार के रूप में कुछ ऐसे काम भी करने पड़ते हैं और अजीब बात यह है कि उन कामों के बदले नकदी या अन्न आदि के रूप में कुछ भी भुगतान नहीं किया जाता है। इस जाति के युवक यदि परदेश में जाकर नौकरी के आधार पर आर्थिक रूप से सम्पन्न स्थिति में आते जाते हैं, परन्तु जब वे गांव में आते हैं, तो उन्हें भी अपमानित करने के साथ–साथ बेगार करने को मजबूर किया जाता है और उन्हें सबसे नीचे का व्यक्ति होने का अहसास कराने में ये जमीन्दार और तथाकथित ऊँची जाति के लोग गर्व महसूस करते हैं।

जो काम कोई दूसरा नहीं कर सकता है, ऐसे कामों को करने के लिए चमारों को ही लगाया जाता है और उसमें उनकी अपनी जरूरतों तथा भावनाओं का कोई ख्याल नहीं किया जाता। अकुशल मजदूर के रूप में वे घास काटने, के साथ–साथ चपरासीगिरी और चौकीदारी जैसे पुराने काम भी करते हैं। चमड़ा कमाने और उसका शोधन करने के कारण ही उसे चमार की संज्ञा दी गई है। हालांकि अब इससे संबंधित ही नहीं, इससे भी आगे आधुनिक ढंग के बूट और जूते भी तैयार करता है। कहीं–कहीं वह जानवरों को खरीदने और बेचने का काम भी करता है।

चमारों की स्त्रियाँ लगभग सभी कामों में इनका सहयोग करती हैं और घर के काम के अलावा खेतों में भी पुरूष के साथ निराई–गुड़ाई और कटाई–छंटाई तथा रखवाली के काम में हाथ बंटाती हैं। तैयार अनाज को घर तक लाने और फिर बाजार में ले जाने में भी इनकी भूमिका होती है।

इस जाति के लोगों के शोषण में कहीं कमी नहीं की जाती। खेत में काम करने वाले के लिए तो पूरे साल का काम निर्धारित रहता है। जबर्दस्त गर्मी के महीने जून से लेकर सर्दी आरम्भ होने के महीने नवम्बर तक तो वह खेतों की जुताई में लगा रहता है, फिर नवम्बर और दिसम्बर का महीना खरीफ की फसल की कटाई में बीत जाता है। जनवरी–फरवरी में वह भू–स्वामी के घर और बाहर के कामों में लगा रहता है। मार्च और अप्रैल के महीने में यह रबी की फसल की कटाई में लगा रहता है। इस प्रकार यह लगभग पूरे साल ही निराशा में डूबा, बेजान की तरह, गुलामों जैसे जीवन को ढोता रहता है।

दूसरों के हुक्म मानने में ही वह अपनी भलाई समझता है, चाहे कितनी भी पीड़ा उसके तन–मन को, लेकिन वह उफ तक नहीं करता, क्योंकि उसे हमेशा एक डर–सा बना रहता है कि कहीं जवान खोलने के बदले उसे पिटाई न झेलनी पड़े या कही उसे गांव से बाहर रहने की जमीन से भी बेदखल होने का दण्ड न भुगतना पड़े। अब पहले की अपेक्षा थोड़ा बदलाव तो हो रहा है, क्योंकि ये अब गांव से बाहर भी काम के लिए जाने लगे हैं। मजदूरी से तो पेट का पालन हो जाए, वही गनीमत है, इसलिए चमड़ा या बैल खरीदने आदि कार्यों के लिए वे जो कर्जा लेते हैं, उसका भी उन पर बराबर दबाव बना रहता है और कर्ज की अदायगी में लगा रहता। इनमें कानूनी अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है और इसके लिए उन्होंने थोड़ा–सा मुँह खोलना शुरू किया है, यह हालात में गुणात्मक परिवर्तन को शुभ संकेत है। लेकिन पूरी तरह से स्वावलम्बी बनने के लिए तो अभी लम्बा रास्ता तय करना पड़ेगा।

अशिक्षित होना–

शिक्षा का अभाव होना चमारों की अवनति का एक महत्वपूर्ण कारण है। पहले इनके लिए हिन्दू शास्त्रों के अनुसार शिक्षा का विधान ही नहीं था, लेकिन बीसवी सदी में महात्मा ज्योतिबा फुले जैसे समाज–सुधार की वजह से इनके लिए शिक्षा के द्वार खुले, लेकिन उसका लाभ तो बहुत गिने–चुने लोगों को ही मिल पाया और आजादी के बाद सरकार की ओर से जो प्रयास किये गए, उसकी भी पहुँच सक्रिय रूप से बहुत नीचे तक नहीं हो पाई, क्योंकि जिनके हाथों में शिक्षा के विस्तार कार्यक्रमों के अनुपालन का उत्तरदायित्व है, वे इन्हे बराबरी में नहीं लाना चाहते।

वैसे दूसरों की देखादेखी थोड़ी–सी दूर की सूझबूझ रखने वाले बिरादरी के लोगों की तरफ से जो प्रयास हुए है, वे भी नाकाफी है, लेकिन विकास का पहिया चल जरूर पड़ा है और शिक्षा के निजीकरण से जिस प्रकार शिक्षा महंगी होती जा रही है, इससे विकास का रफ्तार फिर से कम होने की संभावना बन रही है इस कमी को पूरा करने के लिए चमार जाति के शिक्षित और सम्पन्न लोगों को सामूहिक प्रयास करने होंगे।

अंधविश्वास–

चमार जाति के लोगों में जो अंधविश्वास सदियों से चले आ रहे हैं, वे अभी भी बरकरार हैं। मानसिक दासता से उबरने में अभी वक्त लगेगा। भूत–प्रेत, जादू–टोना में विश्वास बराबर बना हुआ है। मृतक की अस्थियों को गया, हरिद्वार या इलाहाबाद गंगा में प्रवाहित करने की प्रथा कुछ स्थानों पर अभी चल रही है। और मृतक की मुक्ति के लिए बड़ा भोज दिया जाता है, चाहे पैसा कहीं से कर्ज में ही क्यों न उठाना पड़े। छठी व तेरहवीं तो अभी भी बड़े पैमाने पर प्रचलित हैं। वैसे शिक्षित समाज तो इस प्रकार के अंधविश्वासों से दूर होता जा रहा है, जो अच्छा लक्षण है, लेकिन 90 प्रतिशत से अधिक आबादी तो इस प्रकार के अंधविश्वासों में ग्रस्त है और खून–पसीने कमाई को व्यर्थ में बर्बाद कर रही है।

फिजूलखर्ची–

यह बहुत ही दुःखद पहल है कि जिन्हें कमरतोड़ मेहनत के बाद आधी अधूरी मजदूरी मिलती हैं, लेकिन वे दूसरों की देखादेखी शादी–विवाह, जन्म–मृत्यु, मेले–ठेलों तथा तीज–त्योहारों के अवसर पर दिल खोल कर खर्चा करते हैं, जिससे उन पर अतिरिक्त बोझ पड़ता है। यह निश्चित है कि उन्हें कर्ज पर जरूर पैसे उठाने पड़ते हैं और इनके लिए कर्ज की दरें भी महंगी होती है, उसे सूद सहित चुकाने में होने वाली परेशानियों को वह नजरअंदाज कर जाते है और इस कारण जीवन के दूसरे जरूरी काम अटक जाते हैं। आज जमाना बदल रहा है, तरक्की के नए–नए प्रतिमान विकसित हो रहे हैं, इसलिए चाहे जैसा भी अवसर हो, अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही खर्च करना चाहिए, दूसरे की नकल नहीं करनी चाहिए और अपने जैसी स्थिति वालों के साथ ही संबंध बनाना अधिक उचित होगा, जिससे अपने ऊपर अनाश्यक बोझ न पड़े।

आलस्य–

वैसे तो आलस्य और प्रमाद एक मानसिक वृत्ति है, लेकिन जीवन की बेहतरी के लिए इनका त्याग किया जाना जरूरी है। चमार जाति के लोगों में आलस्य दूसरों की अपेक्षा अधिक पैमाने पर देखा गया है। वह जहाँ तक होता है, काम से जी चुराने की कोशिश करता है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि यदि अपनी ज्वलंत समस्याओं के समाधान के लिए सक्रिय पहल नहीं करेंगे, तो सबसे बड़ी संख्या वाली बिरादरी होने के बावजूद वो सम्मान और अधिकार प्राप्त नहीं होंगे, जो कम संख्या वाली दूसरी कौम के लोग संगठन के बल पर हासिल कर लेंगे।

साभार :
चमार जाति इतिहास और संस्कृति
पेज संख्या 109 से 117 तक
एस.एस.गौतम
डॉ.आर.एम.एस. वियजी

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और दबायें।

अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण नियमावली 1995 नियम 12/4

राहत के माप दण्ड

	अपराध का नाम	राहत ही न्यूनतम रकम
(1)	(2)	(3)
1	अखाद्य या घृणाजनक पदार्थ पीना या खाना (धारा 3(1)(i)	प्रत्येक पीड़ित को अपराध के स्वरूप और उसकी गम्भीरता को देखते हुए 90,000/– रूपए या उससे अधिक और जो पीड़ित व्यक्ति द्वारा अनादर, अपमान, क्षति और मानहानि सहने के अनुपात में भी होगा । दिया जाने वाले भुगतान निम्नलिखित होगा – 1– 25 प्रतिशत जब न्यायालय को आरोप पत्र भेजा जाये । 2– 75 प्रतिशत जब निचले न्यायालयों द्वारा दोश सिद्व ठहराया जाए ।
2	क्षति पहुंचाना, अपमानित करना या क्षुब्ध करना (धारा 3(1)(ii)	
3	अनादर सूचक कार्य (धारा 3(1)(iii)	
4	सदोष भूमि को अभियोग में लेना या भूमि पर कृषि करना आदि (धारा 3(1)(iv)	अपराध के स्वरूप और गम्भीरता को देखते हुए कम से कम 90,000/– रूपए या उससे अधिक भूमि/परिसर/जल की आपूर्ति जहॉ आवश्यक हो, सरकार के खर्च पर पुनः वापस की जायेगी । जब आरोप पत्र न्यायालय को भेजा जाये पूरा भुगतान किया जाये ।
5	भूमि/परिसर या जल से संबंधित (धारा 3(1)(v)	
6	बेगार या बलात् श्रम या बंधुआ मजदूरी (धारा 3(1)(vi)	प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति को कम से कम 90,000/– रूपए प्रथम सूचना रिपोर्ट होने की अवस्था में 25 प्रतिशत और 75 प्रतिशत निचले न्यायालय में दोष सिद्व होने पर ।
7	मतदान के अधिकार के संबंध में (धारा 3(1)(vii)	प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति से 75,000/– रूपए तक जो अपराध के स्वरूप और गंभीरता पर निर्भर है ।
8	मिथ्या द्वेष पूर्ण या तंग करने वाली विधिक कार्यवाही (धारा 3(1)(viii)	90,000/–रूपए या वास्तविक विधिक व्यय और क्षति की प्रतिपूर्ति या अभियुक्त के विचारण की समाप्ति के पश्चात् जो भी कम हो ।
9	मिथ्या या तुच्छ जानकारी (धारा 3(1)(ix)	
10	अपमान,अभित्रास और अवमानना (धारा 3(1)(x)	अपराध के स्वरूप पर निर्भर रहते हुए प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति को 90,000/– रूपये तक 25 प्रतिशत उस समय जब आरोप–पत्र न्यायालय को भेजाजाये और शेष दोषसिद्व होने पर ।
11	किसी महिला की लज्जा भंग करना (धारा 3(1)(xi)	अपराध के प्रत्येक पीड़ित को 1,80,000/– रूपए , चिकित्सा जॉच के पश्चात् 50 प्रतिशत का भुगतान किया जाये और शेष 50 प्रतिशत का विचारण की समाप्ति पर भुगतान किया जाये ।
12	महिला का लैंगिक शोषण (धारा 3(1)(xii)	
13	पानी गंदा करना (धारा 3(1)(xiii)	3,50,000/–रूपए तक जब पानी को गन्दा कर दिया जाये तो उसे साफ करने सहित या सामान्य सुविधा को पुनः बहाल करने की पूरी लागत। उस स्तर पर जिस पर जिला प्रशासन द्वारा ठीक समझाा जाये, भुगतान किया जाये ।
14	मार्ग के रूढ़िजन्य अधिकार से वंचित करना (धारा 3(1)(xiv)	3,75,000/– रूपए तक या मार्ग के अधिकार को पुनः बहाल करने की पूरी लागत और जो नुकसान हुआ है, यदि कोई हो, उसका पूरा प्रतिकर। 50 प्रतिशत जब आरोप–पत्र न्यायालय को भेजा जाये और 50 प्रतिशत निचले न्यायालय में दोष सिद्व होने पर ।
15	किसी को निवास स्थान छोड़ने पर मजबूर करना (धारा 3(1)(xv)	स्थल बहाल करना, ठहराने का अधिकार और प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति को 90,000/– रूपए का प्रतिकर तथा सरकार के खर्च पर मकान का पुनर्निमाण, यदि नष्ट कर किया गया हो। पूरी लागत का भुगतान जब निचले न्यायालय में आरोप पत्र भेजा जाये ।
16	मिथ्या साक्ष्य देना धारा 3(2)(i)और(ii)	कम से कम 3,75,000/– रूपए या उठाये गये नुकसान या हानि का पूरा प्रतिकर । 50 प्रतिशत का भुगतान जब आरोप पत्र न्यायालय में भेजा जाये और 50 प्रतिशत निचले न्यायालय द्वारा दोष सिद्व होने पर ।
17	भारतीय दंड संहिता के अधीन 10 वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दण्डनीय अपराध करना धारा 3(2)(v)	अपराध के स्वरूप व गम्भीरता को देखते हुए प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति को या उसके आश्रित को कम से कम 1,80,000/– रूपए यदि अनुसूची में विशिष्ट । अन्यथा प्रावधान किया हुआ हो तो उस राशि में अन्तर होगा ।
18	किसी लोक सेवक के हाथों उत्पीड़ित धारा 3(2)(vii)	उसी प्रकार से भुगतान किया जाये जिस प्रकार से यदि अभियुक्त लोक सेवक न हो ।
19	निःशक्तता– निःशक्तता की परिभाषा निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 की धारा में यथा प्रदत्त होगी और उसके निर्धारण के लिए दिशा निर्देश, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के तारीख 01.06.2001 की भारत सरकार अधिसूचना संख्या–154, समय समय पर यथासंशोधित में अंतर्विष्ट होगी । अधिसूचना की एक प्रति अनुसूची के उपाबंध–2 पर संलग्न है । (क) 100 प्रतिशत असमर्थता (i) परिवार का न कमाने वाले सदस्य	अपराध के प्रत्यक पीड़ित को कम से कम 3,75,000/– रूपए 50 प्रतिशत प्रथम सूचना रिपोर्ट पर और 25 प्रतिशत आरोप–पत्र पर और 25 प्रतिशत निचले न्यायालय द्वारा दोष सिद्व होने पर ।
	(ii) परिवार का कमाने वाला सदस्य	अपराध के प्रत्येक पीड़ित को कम से कम 7,50,000/– रूपए 50 प्रतिशत प्रथम सूचना रिपोर्ट या चिकित्सा जांच पर भुगतान किया जाये और 25 प्रतिशत जब आरोप पत्र न्यायालय को भेजा जाये तथा 25 प्रतिशत निचले न्यायालय में दोष सिद्व होने पर ।
	(ख) जहॉ असमर्थता 100 प्रतिशत से कम है ।	परन्तु यह कि अपराध के प्रत्येक पीडित का परिवार के न कमाने वाले सदस्य को भुगतान की जाने वाली रकम में से 60,000/– रूपये से अन्यून रकम और परिवार के कमाने वाले सदस्य को भुगतान की जाने वाली रकम में से 1,20,000/– रूपये से अन्यून रकम की कमी की जाएगी ।
20	हत्या/मृत्यु (क) परिवार का न कमाने वाला सदस्य (ख) परिवार का कमाने वाला सदस्य	प्रत्येक मामले में कम से कम 3,75,000/– रूपए । 75प्रतिशत पोस्टमार्टम के पश्चात् और 25 प्रतिशत निचले न्यायालय में दोष सिद्व होने पर।
21	हत्या, मृत्यु, नरसंहार–बलात्संग, सामूहिक बलात्संग, गैंग द्वारा किया गया बलात्संग, स्थायी असमर्थता और डकैती का पीड़ित ।	उपर्युक्त मदों के अन्तर्गत भुगतान की गयी राहत की रकम के अतिरिक्त, राहत की व्यवस्था अत्याचार की तारीख से तीन माह के भीतर निम्नलिखित रूप से की जाए :– (i)अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के मृतक की प्रत्येक विधवा और/या अन्य आश्रितों को 4,500/– रूपए प्रतिमाह की दर से या मृतक के परिवार के एक सदस्य को रोजगार या कृषि भूमि, एक मकान यदि आवश्यक हो तो तत्काल खरीद द्वारा । (ii) पीड़ितों के बच्चों की शिक्षा और उनके भरण पोषण का पूरा खर्च/बच्चों को आश्रय के विद्यालयों एवं आवासीय विद्यालयों में दाखिल किया जाये । (iii) तीन मास की अवधि के लिए बर्तनों, चावल, गेहूँ, दालों , दलहनों आदि की व्यवस्था ।
22	पूर्णतया नष्ट करना या जला हुआ मकान	जहां मकान को जला दिया गया है या नष्ट किया गया हो । वहां सरकार के खर्च पर ईंट पत्थर के मकान का निर्माण किया जाये या उसकी व्यवस्था की जाये ।

विजय सांपला
अध्यक्ष राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, भारत सरकार

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें ।

आधुनिक दलित विमर्श और दलित साहित्यकारों की आत्मकथाएँ

21 वीं शताब्दी में तीन विमर्श देखने को मिलते हैं। जो निम्नानुसार हैं –

1. दलित विमर्श
2. स्त्री विमर्श
3. आदिवासी विमर्श

उपर्युक्त संदर्भ में, मैं दलित विमर्श आधुनिक दलित आत्मकथाओं की चर्चा करूँगी। जो मेरे शोध प्रबंध से सम्बंधित है। दलित आत्मकथाओं में सर्वप्रथम मराठी दलित लेखक 'दयापवार' की 'बलुंत' आत्मकथा है। जिसका 'हिन्दी' अनुवाद 'अछूत' नाम से सन् 1980 में हुआ था। इससे पहले 'डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर' ने 'मेरा बचपन' शीर्षक से जीवन के कुछ प्रसंगो को प्रस्तुत किया था। लगभग इसके बीस वर्ष बाद 'दयापवार' की आत्मकथा 'बलंतु' आई। शायद यही वो पहली आत्मकथा है जिसने पहली बार सामाजिक यथार्थ को सामने लाया। 'दयापवार' ने अपनी आत्मकथा 'अछूत' में ऐसे सच को उजागर किया जिसे लेखक ने खुद भोगा है, मरे हुए जानवरों के शरीर को उधेड़ना उससे माँस काटकर लाना। उसे घरों में टांगकर सुखाना, उसका सड़ना, उसको पकाकर खाना यह है। दलित अभिव्यक्ति। कँवल भारती 'दलित विमर्श' की भूमिका में लिखते हैं, कि –

''यह रोगटें खड़े कर देने वाली यंत्रणा की कहानी है, जिसे लेखक ने स्वयं भोगाना था। मरे हुए जानवरों के शरीर को उधेड़ना उससे माँस काटकर लाना, उसे घरों में टांग कर सुखाना उसका सड़ना उसको पकाकर खाना, इस सबको पढ़ना एक अछूत के जिंदा नरक से गुजरना है।''

स्पष्टतः मैं आधुनिक दलित विमर्श समय सीमा 20 वीं शताब्दी का अन्तिम चरण एवं 21 वीं शताब्दी की प्रथम चरण मान सकती हूँ। शायद इसमें कोई अतिश्योक्ति न होगी। इसके बाद प्र.ई. सोनकांवले की आत्मकथा 'आठवणीचेपंक्षी' का अनुवाद 'यादों के पंक्षी' से हुआ। 'शंकरराव खरात' की आत्मकथा 'तराल–अंतराल' का अनुवाद इसी' शीर्षक से हिन्दी में हुआ। शरणकुमार लिंबाले की आत्मकथा 'अक्करमाशी' का हिन्दी अनुवाद (1984) 'दोगला' शीर्षक से हुआ। जिसने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, सच के साथ–साथ दलित अस्तित्व के प्रश्न को भारतीय समाज के सामने लाया। वे लिखते हैं, कि –

''मेरी माँ अछूत तो पिता सवर्ण। माँ झोपड़ी में पिता कोठी। पिता जमींदार माँ भूमिहीन। और मैं अक्करमाशी।''

इस कड़ी में 'एम.एन निमगडे', 'धूल का पंक्षी यादों के पंख' आती है। जो दलित जीवन को व्यक्त करती है। इधर हिन्दी में 'मैं भंगी हूँ।' (1981) में प्रकाशित हुई। सन् 1997 में 'ओमप्रकाश बाल्मीकि' की आत्मकथा 'जूठन' का पहला पुस्तकालय संस्करण राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली से हुआ था। 'जूठन' आत्मकथा के संदर्भ में कँवल भारती दलित विमर्श की भूमिका में लिखते हैं, कि–''यदि दलित समस्या वर्ग समस्या हैं। और जन्मना दलितों की सिवा भी लोग दलित है। तो यह व्यवस्था किसने बनाई। कि जूठन उठाने और खाने का काम जन्मना दलितों को ही करना पड़ा।''

दलित होने के कारण ही तो दलितों को यातनाएँ सहनी पड़ी। 'ओमप्रकाश बाल्मीकि' का कहना है कि गुरू के आदर्श रूप की जब कोई बात करता है। तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं। जो माँ–बहन की गालियाँ देते थे। सुन्दर लड़कों के गाल सहलाते थे। और उन्हें अपने घर उनसे वाहियातपन करते थे। वे लिखते हैं, कि–''एक रोज हेडमास्टर कालीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा–'क्या नाम है वे तेरा?' ''ओमप्रकाश'' मैंने डरते–डरते धीमें स्वर में अपना नाम बताया। हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी।

''चूहड़े का है।'' हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला, 'जी' ठीक है– वह जो सामने शीसम का पेड़ है। उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़ के झाड़ू बना ले। पत्तों वाली झाड़ू बनाना और पूरे स्कूल को ऐसा चमका दे। जैसा सीसा। तेरा तो ये खानदानी काम है। जा फटाफट लग जा काम पे। आगे लिखते हैं– मैं मैदान की सफाई कर रहा था बाकी बच्चे चैन से पढ़ रहे थे। यह क्रम कुछ दिनों लगातार चला।'' ''तीसरे दिन मैं कक्षा में जाकर चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर बाद उनकी आवाज सुनाई पड़ी। उठ, ओ चूहड़े के, कहाँ घुस गया अपनी माँ।'' उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर–थर काँपने लगा। एक त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहाँ 'मास्साब वो बैठा है कोने में।' हेडमास्टर ने लपकर मेरी गर्दन दबोच ली थी। उनकी उँगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था। जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटका। चीख कर बोले जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू नहीं तो मिर्ची डालकर स्कूल से बाहर निकाल दूंगा।''

यह गुरू का दलित छात्र के प्रति किया गया दुर्व्यहार है। जो स्कूल व विद्यालयों में दलित छात्र का स्थान निर्धारित करता है। इसके पीछे छुपा कारण परम्परागत सोच है। क्योंकि गुरू भी सामाजिक प्राणी होता है। इसलिए धार्मिक मानसिकता से उभर नहीं पाता। इसके बाद 'दोहरा अभिशाप' कौशल्या वैसंत्री की आत्मकथा का प्रकाशन हुआ। जिसमें लेखिका भारतीय समाज में दलितों की स्थिति को व्यक्त करते हुये लिखती हैं, कि–

''ब्राह्मणों की लड़कियाँ बहुत अच्छे–अच्छे साफ–सुथरे कीमती कपड़े पहनकर आती मेरा बस्ता दो–तीन कपड़ों की पट्टियों को जोड़कर बनाया गया होता था। वे अच्छे टिफिन बाक्स में खाना लेकर आती थी। उसमें कभी पूरियाँ, कभी पराठें, कभी पोहा, कभी सूजी का हलवा, कभी कुछ पकवान रहता था। मैं दीवार की ओर मुँह करके खाना खाती थी। ताकि कोई देख न ले। ''मैं अस्पृश्य हूँ, इसका मुझें बहुत दुख होता। डर लगता कहीं मेरी जाति न पूछ ले।''

इस प्रकार दलितों के जीवन में आर्थिक निर्धनता के साथ–साथ जाति भी दुख का कारण है। जो उसके जीवन की उन्नति के सारे मार्ग बंद करती है। 'श्यौराज सिंह' बेचैन की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' का प्रकाशन हुआ। जो भारतीय समाज में दलित शिशु अवस्था का वर्णन करती है। और यह सिद्ध करती है, कि भारतीय समाज में 'बाल' जीवन कितना असुरक्षित होता है, वे लिखते हैं, कि–''मुझे चौधरी के घर और खेतों के कामों में स्कूल के बाद उनकी रोटी की कीमत चुकानी होती थी। फिर हाँफते–भागते लेट स्कूल पहुँचना होता था। यह दिन–चर्या मेरी उन दिनों मेरे पास हाई–स्कूल तक स्कूल ड्रेस भी नहीं। एक ही जोड़ी कपड़े थे सो स्कूल जाकर उन्हें उतार कर टाँग देता था। और नेकर बनियान में काम करता रहता था। बदलने के लिए दूसरी जोड़ी नहीं होते थे। एक सप्ताह एक गंदे कपड़े स्कूली साथियों से छिपाने मुश्किल होते।''

सूरजपाल की तिरस्कृत आत्मकथा भी यही वेदना और दुख को व्यक्त करती है। वह लिखते हैं। कि लोग मजबूरी बश 'सरनेम' बदल लेते हैं– ''दिल्ली के भगत सिंह कालेज में बी.ए. करते समय ऐसे हालात से गुजरना पड़ा। जब लगा कि इन हालातों पर काबू नहीं पा सकता तो समझौता कर लेना पड़ा। मैंने अपने नाम के साथ गोत्र 'चौहान' प्रयोग करना शुरू कर दिया अब कालेज के साथी मुझे राजपूत या ठाकूर समझते।''

'मोहनदास नैमिशराय' भी अपने–अपने पिंजरे में लिखते हैं। कि हमारे गाँव मेरठ में भी दलितों की यही स्थिति थी। लोग उन्हें सम्मान के साथ नहीं बुलाते थे। बल्कि घृणावश वे हमारी जाति से हमें संबोधित करते थे। वे लिखते है, कि–''हमारी जाति के लोगों को स्त्री हो तो चमारि, पुरूष हो तो चमार कह कर बुलाते थे। मंदिर और सवर्णों के लिए हम शूद्र थे। अछूत थे। दलित थे। पर इन्सान न थे। हमारी छाया भी उनके लिए अपवित्र थी।

तुलसीराम की 'मुर्दहिया' भी यही सच व्यक्त करती है। 'मुर्दहिया' का 'मणिका' (भाग–2) भी सन् 2015 में प्रकाशित हुआ है। तुलसीराम भी अपने जीवन की उन घटनाओं को व्यक्त करते हैं। जो वर्णव्यवस्था के 'चतुर्थवर्ण शूद्र जाति को सहन करने पड़ते हैं। बेगार प्रथा के चलते उन्हें व उनके समाज को ऐसा भोजन तलाशना पड़ता है। जो खाने योग्य नहीं होता था। फिर भी खाना पड़ता था, कारण बेगार के चलते आर्थिक निर्धनता। लेखक लिखते हैं, कि– ''दलित औरतें और बच्चे प्रायः 'मुर्दहिया' के जंगलों तथा गाँव के ताल से खाने योग्य वनस्पतियों को ढूढ़ने निकल जाते। जंगल में तो कुछ भी नहीं मिलता किन्तु झाड़ियों में चूहों को मारकर लाते। और पकाकर खाते थे।

इसी कड़ी में एम. एल शहारे की आत्मकथा 'यादों के झरोखे' डी.आर. जाटव की 'मेरा सफर मेरे मंजिल', राजपाल की 'राजसतसई' और सुशीला टाक भौरे की 'शिकंजे का दर्द', रूपनारायण सोनकर की 'नागफनी' उल्लेखनीय आत्मकथाएँ हैं। रूपनारायण सोनकर ने भी दलित जीवन को जिया है। इसलिए उनकी आत्मकथा में क्रान्तिकारी विचार जन्म लेते हैं। वे लिखते हैं, कि – ऐसे धर्म ग्रंथों को टुकड़े–टुकड़े कर देना चाहिए जो समाज में भेदभाव फैलाते हैं। 'रामचरित–मानस' के टुकड़े–टुकड़े प्रंसग' में लेखक ने इसे सिद्ध किया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष कह सकते है कि दलित आत्मकथाएँ 'वर्णव्यवस्था' का विरोध करती है। क्योंकि जाति व्यवस्था ने न सिर्फ जन्म से जाति के आधार पर काम निश्चित कर दिया है। बल्कि इसी ने जन्म से ताउम्र दलितों के नसीब में दरिद्रता भुखमरी अस्वच्छता व अंधविश्वास का वातावरण भी लिख दिया है। वास्तव में यह आत्मकथाएँ सिद्ध करती है कि जाति व्यवस्था दुश्चक्र है। जिसमें प्रत्येक स्थित दूसरी स्थित का कारण भी है। परिणाम भी परन्तु सबसे बड़ा कारण जाति है।

जाति के कारण ही दलितों को मंदिर जाने से रोका गया। शिक्षा पाने से रोका गया। पानी पीने से रोका गया। यही वजह है। जो दलित साहित्य को मार्क्सवादी और प्रगतिशील साहित्य से अलग करता है। यह आत्मकथाएँ समाज में समानता स्वतंत्रता बंधुत्व की मांग करती हैं। इसलिए इनमें मुक्ति की छटपटाहट प्रमुख है।

नाम – केशर अहिरवार
पता – छतरपुर (म० प्र०)
मो० – 9981343069

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

अस्पृश्य–उनकी संख्या

यह जानने से पहले कि अस्पृश्य होने का क्या अर्थ होता है, यह जानना आवश्यक है कि भारत में अस्पृश्यों की संखया कितनी है? इसके लिए जनसंख्या रिर्पोट देखनी होगी।

भारत में पहली बार आम जनगणना 1881 में हुई थीं 1881 की जनसंख्या रिर्पोट में भारत की कुल जनगणना करने के लिए यहां की विभिन्न जातियों और प्रजातियों की सूची बनाने और उनका कुल योग करने के अतिरक्ति कुछ नहीं किया गया था। इस रिर्पोट में विभिन्न हिंदू जातियों का उच्च या निम्न अथवा स्पृश्य या अस्पृश्य जातियों के रूप में कोई वर्गीकरण नहीं किया गया। दूसरी बार आम जनगणना 1891 में हुई । इस बार जनगणना आयुक्त ने देश की जनसंख्या को जाति, प्रजाति और उच्च या निम्न जाति के रूप में वर्गीकृत करने की कोशिश की। किंतु यह एक प्रयास मात्र था।

तीसरी बार आम जनगणना 1901 में हुई। इस बार जनगणना के एक नया सिद्धान्त अर्थात स्थानीय जनमत द्वारा स्वीकृत सामाजिक वरीयता के आधार पर वर्गीकरण का सिद्धान्त अपनाया गया। इस पर उच्च जाति के हिंदुओं ने जाति के अनुसार उल्लेख किए जाने के तीव्र विरोध किया। उन्होंने जाति के बारे में पूछे गए प्रश्न को निकाल देने पर देने पर बल दिया।

किंतु जनगणना आयुक्त पर इस आपत्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जनगणना आयुक्त की दृष्टि में जाति के आधार पर उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण और आवश्यक था। जनगणना आयुक्त ने यही तर्क दिया कि सामाजिक संस्था के रूप में जाति के गुण–दोष के बारे में चाहे कुछ भी कहा जाए, परन्तु यही स्वीकार करना असंभव है कि भारत में जनसंख्या संबंधी समस्या पर कोई भी विचार–विर्मश, जिसमें जाति एक महत्वपूर्ण मुद्दा न हो, लाभप्रद हो सकता है। भारतीय समाज का ताना–बाना अभी जाति–व्यवस्था पर आधारित है और भारतीय समान के विभिन्न स्तरों में परिवर्तन का निर्धारण अभी भी जाति के आधार पर होता है। प्रत्येक हिंदू (यहां इसका प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जा रहा है) जाति में जन्म लेता है, उसकी वह जाति ही उसके धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक जीवन का निर्धारण करती है। यह स्थिति मां की गोद से लेकर मृत्यु की गोद तक रहती है। पश्चिमी देशों में समाज के विभिन्न स्तरों का निर्धारण, चाहे वह आर्थिक हो, शैक्षिक हो, या व्यावसायिक हो, जिन प्रधान तत्वों के द्वारा होता है, वे अदलते–बदलते रहते हैं, वे उदार होते हैं और उनमें जन्म और वंश की कसौटी को बदलने की प्रवृत्ति होती है। भारत में आध्यात्मिक, सामाजिक, सामुदायिक तथा पैतृक व्यवसाय सबसे बड़े तत्व हैं, जो अन्य तत्वों की अपेक्षा प्रधान तत्व होते हैं इसलिए पश्चिमी देशों में जहां जनगणना के समय आर्थिक अथवा व्यवसायिक वर्ग के आधार पर आंकड़े एकत्र किए जाते हैं, वहां भारत में जनगणना के समय धर्म और जाति का ध्यान रखा जाता है। राष्ट्रव्यापी और सामाजिक संस्था के रूप में जाति के बारे में कुछ भी क्यों न कहा जाए, इसकी अपेक्षा करने से कोई लाभ नहीं होगा और जब तक समाज में किसी व्यक्ति के अधिकार और उसके पद की पहचान जाति के आधार पर की जाती रहेगी, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि हर दस साल बाद होने वाली जनगणना से इस अवांछनीय संस्था के स्थाई होते जाने में सहायता मिलती है।

सन् 1901 की जनगणना के परिणामस्वरूप अस्पृश्यों की कुल जनसंख्या के बारे में कोई सटीक आंकड़े नहीं निकल सके। इसके दो कारण थे। पहला तो यह कि इस जनगणना में कौन अस्पृश्य है और कौन नहीं है, इसे निश्चित करने के लिए कोई सटीक कसौटी नहीं अपनाई गई थीं दूसरे यह कि जो जातियां आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़ी हुई थीं और अस्पृश्य नहीं थीं, उन्हें भी अस्पृश्यों की जनसंख्या के साथ मिला दिया गयां

सन् 1911 की जनगणना में कुछ आगे काम हुआ और अस्पृश्यों की गणना बाकी लोंगो से अलग करने के लिए दस मानदंड अपनाए गए। इन मानदंडों के अनुसार जनसंख्या अधीक्षकों ने उन जातियों और कबीलों की अलग–अलग गणना की , जो –

1. ब्राम्हणों की श्रेष्ठता को नहीं मानते,
2. किसी ब्राम्हण या अन्य मान्यता प्राप्त हिंदू से गुरू–दीक्षा नहीं लेते,
3. वेदों की सत्ता को नहीं मानते थे।
4. बड़े–बड़े हिंदू देवी–देवताओं की पूजा नहीं करते,
5. ब्राम्हण जिनकी यजमानी नहीं करते,
6. जो किसी ब्राम्हण को पुरोहित बिल्कुल भी नही बनाते,
7. जो साधारण हिंदू मंदिरों के गर्भ–गृह में भी प्रवेश नहीं कर सकते,
8. जिनसे छूत लगती है,
9. जो अपने मुर्दो को दफनाते हैं, और
10. जो गोमांस खाते हैं और गायों की पूजा नहीं करते।

हिंदुओं से अस्पृश्यों को अलग मानने पर मुसलमानों द्वारा सरकार को 27 जनवरी 1910 को प्रस्तुत किए आपने एक ज्ञापन में इस मार्ग पर बल दिया गया कि उन्हें भारत की राजनीतिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व हिंदुओं की कुल जनसंख्या के अनुपात में न देकर उन हिंदुओं की जनसंख्या के अनुपात में दिया जाए जो स्पृश्य होते हैं, क्योंकि उनका यह तर्क था कि जो अस्पृश्य हैं, वे हिंदू नहीं हैं।

इस तरह यह कह जा सकतर है कि 1911 की जनगणना से अस्पृश्यों की संख्या के निर्धारण की शुरूआत हुई। 1921 और 1931 की जनगणना में भी इन हिदायतों के अनुपालन की कोशिश जारी रखी गई।

साइमन कमीशन जो 1930 में भारत आया था, इन्ही कोशिशों के परिणामस्वरूप कुछ–कुछ निश्चयपूर्वक यह बता सका कि ब्रिटिश भारत में अस्पृश्यों की जनसंख्या चार करोड़ 45 लाख है।

किंतु 1932 में जब लोथियन समिति पुनर्गठित विधान सभा के लिए मताधिकार के प्रश्न पर विचार करने के लिए भारत आई और उसने जांच करनी शुरू की तब हिंदुओं ने अचानक अपने तेवर बदल दिए और भारत में अस्पृश्यों की संख्या के बारे में जो आंकड़े साइमन कमीशन ने दिए थे उनको भारत में अस्पृश्यों की जनसंख्या के बारे में सही आंकड़ो के रूप में मानने से इंकार कर दिया। कुछ प्रांतों में तो हिंदुओं ने यहां तक कहा कि उनके प्रांत में कोई अस्पृश्य है ही नहीं। इसका कारण यह था कि तब तक हिंदुओं को अस्पृश्यों की स्थिति को खुले आम स्वीकार करने के खतरें का अहसास हो चुका था, क्योंकि इसका मतलब यह था कि हिंदुओं को जनसंख्या के आधार पर विधान सभा में जितना प्रतिनिधित्व मिला हुआ था, उसका कुछ अंश उनसे छीनकर अस्पृश्यों को मिल जाएगा।

सन् 1941 की जनगणना पर विचार करना व्यर्थ है, क्योंकि यही जनगणना युद्ध–काल में की गई और एक प्रकार से यह अनुमानित ही थी।

अंतिम जनगणना 1951 में हुई। निम्नलिखित आंकड़े जनगणना आयुक्त द्वारा जारी विवरण से लिए गए हैं। जनगणना आयुक्त ने भारत में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या पांच करोड़ 13 लाख बताई है।

सन् 1951 की जनगणना में, जिसमें भारत की कुल जनसंख्या 35 करोड़ 67 लाख बताई गई है, एक लाख 35 हजार लोंगों की गणना नहीं की जा सकी, जिनसे संबंधित रिकार्ड जालंधर के जनगणना अधिकारी कार्यालय में आग लग जाने के कारण नष्ट हो गया था।

पैंतिस करोंड़ 67 लाख की कुल आबादी में से 29 करोंड़ 49 लाख लोग ग्रामीण क्षेत्रों में हैं और छह करोड़ 18 लाख लोग शहरों में रहते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या चार करोंड़ 62 लाख है, जब कि शहरों में उनकी जनसंख्या 51 लाख है।

कुल आबादी में गैर–कृषि कार्यो में लगे दस करोड़ 76 लाख लोगों में से एक करोड़ 32 लाख लोग अनुसूचित जातियों के हैं।

कुल आबादी में जिन लोगों या उनके आश्रितों के पास पूरी तरह या आंशिक रूप से अपनी–अपनी जमीनें हैं और जो खेती करते हैं, उनकी जनसंख्या 16 करोड़ 74 लाख है। इनमें से एक करोड़ 74 लाख लोग अनुसूचित जातियों के हैं। जिन लोगों के पास बिल्कुल भी या मुख्य रूप से अपनी–अपनी जमीनें हैं और खेती करते हैं, उनकी जनसंख्या पूरे भारत में तीन करोड़ 16 लाख लोग अनुसूचित जातियों के हैं।

खेतिहर मजदूरों और उनके आश्रितों की कुल जनसंख्या पूरे भारत में चार करोड़ 48 लाख है। इनमें से एक करोड़ 48 लाख अनुसूचित जातियों के हैं।

गैर–कृषि वर्गो के आंकड़े इस प्रकार हैं–

कृषि को छोड़कर अन्य उत्पादन कार्य	:	कुल तीन करोड़ 77 लाख अनुसूचित जातियों के लोग 53 लाख
वाणिज्य व्यवसाय	:	कुल दो करोड़ 13 लाख अनुसूचित जातियों के लोग 9 लाख
परिवहन	:	कुल 56 लाख अनुसूचित जातियों के लोग छह लाख
अन्य सेवाएं और विविध साधन	:	कुल 4 करोड़ 30 लाख अनुसूचित जातियों के लोग 64 लाख

अनुसूचित जाति के लोगों की कुल पांच करोड़ 13 लाख की जनसंख्या में से उत्तरी भारत (उत्तर प्रदेश) में एक करोड़ 14 लाख लोग–; पूर्वी भारत (बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, असम, मणिपुर, त्रिपुरा) में एक करोड़ 28 लाख लोग; दक्षिण भारत (मद्रास, मैसूर, ट्रावनकोर–कोचीन और कुर्ग) में एक करोड़ दस लाख लोग; पश्चिमी भारत (बंबई, सौराष्ट्र और कच्छ) में 31 लाख लोग; मध्य भारत (मध्य प्रदेश, मध्य भारत, हैदराबाद, भोपाल और विंध्य प्रदेश) में 79 लाख लोग; और उत्तर–पश्चिमी भारत (राजस्थान, पंजाब, पटियाला और पूर्वी पंजाब के राज्यों, अजमेर, दिल्ली, बिलासपुर और हिमाचल प्रदेश) में 52 लाख लोग अनुसूचित जाति के हैं।

साभार : बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–09
पृ.सं. 21 से 25 तक डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।

अन्धविश्वास

सेवा में,

नाम श्री.....

पता .....

.....

.....

अन्धविश्वास और मिथ्या दर्शन के व्यवहार को समाज से निकाल देने की बात समाज–सुधारकों के क्षेत्र के अन्तर्गत है। यह बात सामान्य रूप से सब जगह मान्य है। जो लोग इन अन्धविश्वासों के चलन का लाभ उठाकर शोषण करते हैं, वे ही लाभान्वित होते हैं और दूसरा कोई नहीं। साहस और दृढ़ विश्वास के अभाव में दूसरे लोग इस स्थिति को बदलने में असमर्थ हैं। ईश्वर, धर्म, दया ही केवल अन्ध–विश्वास को प्रोत्साहित नहीं करते बल्कि भले और बुरे दिनों का विश्वास, संकल्प, उपवास, तीर्थ–पर्यटन, धार्मिक स्थान और साधुओं की प्रशंसा आदि कृत्य भी अन्धविश्वास के प्रचार में सहायता पहुँचाते हैं, जिसके कारण मनुष्य की शक्ति, बुद्धि, धन तथा समय का अपव्यय होता है। यद्यापि भारत, प्राकृतिक साधनों से भरपूर है फिर भी वह दासता, निर्धनता और पिछड़ेपन के बंधनों से बंधा हुआ है। इसका एक मात्र कारण मनुष्यों का अन्धविश्वास ही है। संसार के कुछ अन्य देशों ने, जो बहुत पिछड़े हुये थे, कुछ वर्षों के अन्दर कला और विज्ञान में भारी उन्नति की है, क्योंकि उन्होंने इन अन्ध–विश्वासों को जड़–मूल से नष्ट कर दिया है।

हमारी जनता इन अन्धविश्वासों को दूर करने के लिये तत्पर नहीं होती। ईश्वर, धर्म, पुराण और स्मृति अपना विरोध प्रकट करते हैं। ''हमारे पूर्वजों का चलन'' इसका सबसे बड़ा विरोध है। करोड़ों रुपया इनके व्यवहार में नष्ट हो जाता है। भारतवर्ष में कुछ ऐसे मंदिर हैं, जिनकी वार्षिक आय करोड़ों रुपया है। यह अपार धनराशि निरर्थक धार्मिक कृत्यों तथा कुछ शोषक जनों के हितार्थ खर्च कर दी जाती है। पुराण, आगम–शास्त्र, आचार्यों की कथाएँ, शुभ दिवस, धार्मिक स्थान तथा रीति–रिवाज इन विश्वासशील मनुष्यों को धोखा देते हैं। यहाँ तक कि देशी और विदेशी सरकारें भी जनता के विश्वास को शोषण करती हैं। भारत की रेलों का उदाहरण लीजिये। यह कोई भी नहीं कह सकता कि रेल के अधिकारीगण इन धार्मिक स्थानों, धार्मिक क्रिया–पद्धतियों तथा तीर्थ यात्राओं में अटूट विश्वास करते हैं। फिर भी आप देखिये, रेलवे विभाग क्या करता है ? '' थुला–स्नानार्थ अवश्य आइये'', ''बैकुंठ एकादशी आपको आमंत्रित करती है'', ''आदि–अमावस्या के हेतु धनुष कोटि अवश्य पधारिये'', '' थिरुवन्नामुलाई में कार्तिकेय दीपम के दर्शनार्थ हम आपका आह्वान करते हैं'', ''क्या आप हरिद्वार कुम्भ–मेला में नहीं जायेंगे ? ''कुम्बा'' कोनम में महामाघम के लिये पधारिये आदि विषयक विज्ञापन, समाचार–पत्रों तथा स्टेशनों पर लगे विज्ञापन पटों में जनता का ध्यान आकर्षित करने और उसको धोखा देने के हेतु किसी सुन्दर नारी का चित्र भी अंकित कर दिया जाता है। ऐसा वे जनता को सीधा स्वर्ग में पहुंचाने के लिये नहीं करते। यह सब आप जानते हैं कि ये सब धन अर्जित करने का एक साधन ही है। सरकार को जो भी कर रूप में दिया जाता है उससे कहीं अधिक जनता इन तीर्थ यात्राओं, धार्मिक अनुष्ठानों तथा झाड़–फूँक और तावीजों में व्यय कर देती है। जो मनुष्य सरकार को दोष दिया करते हैं कि उसने जन–कल्याण के लिये यह नही किया और वह नही किया, वे उपयुक्त प्रकार के अपव्यय की तनिक भी चिंता नहीं करते। वास्तव में अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों तथा पत्रकारों द्वारा सरकार की भूलों की आलोचना करना अधिक सरल है बजाय इसके कि वे इन अन्ध–विश्वासों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करें जिस पर जनता की एक बहुत बड़ी धनराशि का अपव्यय हो रहा है। देश में इस बात की कमी है कि इन अन्ध–विश्वासों के कार्यों में सरकार जरा भी अपना हस्तक्षेप कर सके।

अन्धविश्वासों के कार्यों में व्यय की जाने वाली धनराशि का उपयोग यदि जन–कल्याण के हेतु हो सके, तो हमारी अशिक्षा का अनुपात शीघ्र ही घट जायेगा। अशिक्षा, निर्धनता तथा बीमारी का एक मात्र कारण अन्धविश्वास है।

ऐसे समाज सुधारक बहुत हैं, जो मंच पर खड़ें होकर ''परोपदेश पाँडित्यम '' की बात करते हैं, परन्तु वास्तव में वे स्वयं अपने कथित मार्ग का अनुसरण नहीं करते। यथार्थता का सामना करने के लिये उनमें घबराहट तथा अवरोध उत्पन्न हो जाता है। अन्धविश्वासों को बनाये रखने के लिये शोषित वर्ग कभी भी चैन से नहीं बैठ पाता। लगभग सभी शैव, वैष्णव, सिद्धान्ती आदि धार्मिक सम्प्रदाय, गोष्ठियों का आयोजन करते हैं तथा रामायण, महाभारत, थेवेरम पर कलकक्षेपम् की कोई कमी नहीं रहती। इन भयंकर विपरीत शक्तियों का सामना करने के लिये सुधारकों को अधिक वेग से काम करना होगा और अपना मस्तिष्क दृढ़ बनाना होगा। धर्म और ईश्वर में व्याप्त अन्ध–विश्वास की शक्ति को अत्यल्प समझते हुये इसे अनंत शक्ति तथा नित्य मानना बुद्धि का दिवालियापन है और असफलता को वरण करना है। अन्धविश्वास का व्यवहार एवं श्रद्धान युग–युगान्तरों से चला आ रहा है और इसके समर्थन में एक विशाल साहित्य है, यह कथन सत्यता का प्रमाण उपस्थित नहीं करता। संसार उन महापुरुषों एवं उनके द्वारा सम्पादित उनके उन कार्यों से भरपूर है, जिन्होंने समाज की पुरानी जीर्ण–शीर्ण प्रथाओं को तोड़ कर सफलता प्राप्त की और मनुष्यों के रहन–सहन में परिवर्तन कर दिया।

किसी व्यवस्थित हृदयग्राही पद्धति द्वारा समाज में सुधार किया जा सकता है, ऐसा मुझे अब विश्वास नहीं रहा। मैं अनुभव करता हूँ कि हेतुवाद और समाजवाद का दावा करने वाली हमारी यह तानाशाही सरकार की इस ओर कुछ कर सकती है। यह सरकार वर्ण–व्यवस्था को हटाने के लिये वचनबद्ध है, अतएवः वह ऐसी पुस्तकों तथा साहित्य के चलन पर प्रतिबन्ध लगा दे, जिसमें वर्ण–व्यवस्था की प्रशंसा की गई हो। उन समस्त पुस्तकों की होली जला दी जाये, जो अन्धविश्वास और वर्ण–व्यवस्था तथा जातिगत भेद–भावों से परिपूर्ण हैं। शंकराचार्य तथा मठाधिपति आदि धर्म नेताओं को, जो अब भी वर्ण–व्यवस्था का उपदेश देते हैं, तत्काल उन पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाये या देश निकाला दे दिया जाये। जवाहरात तथा मूल्यवान बर्तनों के रूप में मंदिरों में जमा की हुई अतुल धनराशि जब्त कर ली जाये और उसे अशिक्षितों को शिक्षित बनाने तथा बेरोजगारी दूर करने में व्यय किया जाये। यह आवश्यक है कि जनता द्वारा ऐसी सरकार बने जो इन सुधारों को दृढ़तापूर्वक कार्यान्वित कर सके। इस प्रक्रिया में सम्भवतः बहुत से सुधारकों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ जाये। सबसे बड़ी बात यह है कि समाज–सुधारकों को यदि कोई नास्तिक की संज्ञा दे, तो उसे वे निर्भय होकर स्वीकार कर लें। शब्द 'नास्तिक' अथवा उसका नास्तिकता का भाव कोई अर्थ नहीं रखता। यथार्थ में बात तो यह है कि लोग ब्राह्मण, पुरोहितों, वेदों, शास्त्रों, इतिहास, और पुराणों में विश्वास नहीं करते, उन्हें लोग नास्तिक कहने लगते हैं। आस्तिक होकर यदि कोई शोषण और अंधविश्वास को नहीं मिटा सका, तो नास्तिक होने में क्या बुराई है। वास्तव में मुझे पूर्ण विश्वास है कि समाज–सुधारक यदि संसार को पूर्ण रूपेण सुधरा हुआ देखना चाहते हैं तो उन्हें फौरन नास्तिक बन जाना चाहिये। तब ही नास्तिकता का भय दूर हो सकता है। यह सब ध्यान में रखना चाहिये कि धर्म पुरोहित तथा धनिक लोग सदैव समाजवाद, जनतंत्र और सुधारकों को शत्रु समझते हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि जो लोग किसी एक धर्म का दूसरे धर्म के लिये विरोध करते हैं, एक पैगम्बर या अवतार के विपरीत किसी दूसरे पैगम्बर में विश्वास करते हैं और अन्त में जनता को संकीर्ण मार्ग में ला पटकते हैं, वे ही सुधारों एवं ज्ञान के विरोधी होते हैं। इस प्रकार के झूठे प्रचार के विरूद्ध लोगों को सावधान कर देना चाहिये जिससे वे अज्ञान एवं श्रद्धा के वशीभूत होकर असत्य प्रचार तथा असत्य मार्ग प्रदर्शन के बल पर अपना धर्म परिवर्तन न कर लें। समस्त धर्मावलम्बी लोग एक ही कुटिल नाव के नाविक हैं। मानव जीवन के लिये धर्म परिवर्तन कोई अर्थ नहीं रखता। धर्म परिवर्तन सन्देह निवृत्ति का साधन नहीं है।

ऐसे ब्राह्मण तथा कट्टर धर्मपरायण लोगों के विषय में चेतावनी दे देना परमावश्यक है, जो अपने को बड़ी सरलतापूर्वक महान समाज–सुधारकों की श्रेणी में रखते हैं क्योंकि उन्होंने मांस सेवन, मद्यपान तथा किसी के भी घर पर खान–पान प्रारम्भ कर दिया है। कुछ लोग अपने को महान सुधारकों की गणना में इसलिये रखते हैं क्योंकि उन्होंने अपने विवाह संस्कार में अथवा वेश्या के रूप में किसी रखैल को रखने में किसी जात–पात का विचार नहीं किया। ये हरकतें समाज–सुधार के प्रतिरुप नहीं हैं। इसके साथ–साथ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि इस वर्ण–व्यवस्था तथा जातिगत भेद–भाव के केवल ब्राह्मण ही दोषी हैं, अपितु इस प्रकार के व्यक्ति अन्य सम्प्रदायों में भी थोड़े बहुत रूप से पाये जाते हैं। जनता आलोचना करती है कि लोग इस जातिगत भेद–भाव के कारण ब्राह्मण वर्ग की कटु आलोचना करते हैं, वे ही लोग अपने से निम्न स्तर की जाति के लोगों को समानता का पद नहीं देते। यह आलोचना सत्य है। इसका उत्तर मेरी समझ में यह है कि ब्राह्मण समाज इसका अधिक दोषी हैं, क्योंकि इसके पूर्वजों ने जातिगत भेद–भाव उत्पन्न किया और पनपाया। अगर मानव समाजरूपी सीढ़ी के अन्तिम चरण रूपी ब्राह्मण वर्ग अपना इस विषय में सुधार कर ले, तो और दिशाओं में भी सुधार सरल हो जायेगा। मैं पुनः अपनी बात दोहराता हूँ कि बिना किसी भेद–भाव के जनसंख्या के अनुपात से समस्त जातियों को सेवालयों तथा शिक्षालयों में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

अन्त में यह मैं कहना चाहता हूँ कि सामाजिक सुधार कर अन्तिम लक्ष्य जनता में भली आदतों का शिक्षण, ज्ञान वृद्धि तथा समानता के सिद्धान्तों का पालन आत्म सम्मान की प्राप्ति, और सत्य अर्थ में धर्म निरपेक्ष समाजवाद की स्थापना करना है।

साभार
पेरियार ई. वी. रामस्वामी नायकर
पृष्ठ सं. 112 से 118 तक

Youtube पर Dravid Bharat Channel को Subcribe करें और 🔔 दबायें।